National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(62): 115-120
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. वीरेंद्र कुमार
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला

ममलेश्वर प्रसाद
शोध छात्र,
पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला

Correspondence:
डॉ. वीरेंद्र कुमार
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला

राष्ट्र निर्माण में षोडश संस्कारों का महत्व

डॉ. वीरेंद्र कुमार, ममलेश्वर प्रसाद

संस्कार शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'सम्परिभ्याम् करोतौ भूषणे' इस सूत्र से 'भूषण' के अर्थ में सुट् करने पर 'संस्कार' शब्द बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ है शुद्धिकरण। अर्थात्, संस्कार वह स्नेहयुक्त दीपक है जो मानव को अंधकार से निकालकर असभ्यता से खींचकर महापुरुषों की कोटि में बैठाता है।

संस्कार केवल व्यक्ति का नहीं, बल्कि राष्ट्र का भी निर्माण करते हैं। क्योंकि जब व्यक्ति का मन, बुद्धि और आचरण संस्कारित होता है, तभी समाज संस्कारित बनता है, और संस्कारित समाज ही सशक्त राष्ट्र की नींव रखता है। अतः संस्कार वह अदृश्य शक्ति हैं जो व्यक्ति के चरित्र, समाज की संस्कृति और राष्ट्र की एकता का आधार बनती हैं।

व्यवहारिक रूप में संस्कार का अर्थ है — पवित्रता एवं धार्मिक क्रियाओं द्वारा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले वे अनुष्ठान, जिनसे व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित कर राष्ट्र कल्याण के लिए अपना योगदान देता है।

संस्कारों का महत्त्व

जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व है। संस्कार मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति के द्योतक हैं। इन्हीं के कारण मनुष्य योग्य, प्रतिष्ठित और समाजोपयोगी बनता है। संस्कारों के माध्यम से मनुष्य अपने कर्तव्यों, अनुशासन और नैतिकता की ओर अग्रसर होता है — यही गुण उसे राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी नागरिक बनाते हैं।महर्षियों ने मनुष्य जीवन को अधिकाधिक क्षमतासम्पन्न, संवेदनशील एवं उपयोगी बनाने के लिए संस्कारों की अनिवार्यता स्वीकार की है। उनके अनुसार संस्कार तीन प्रकार से जीवन को उन्नत बनाते हैं —

दोषमार्जन (शुद्धिकरण)
अतिशयाधान (गुणवर्धन)
हीनाङ्गपूर्ति (त्रुटि-संशोधन)

ये तीनों प्रक्रियाएँ न केवल व्यक्ति को परिष्कृत करती हैं, बल्कि समाज और राष्ट्र को भी सशक्त बनाती हैं। क्योंकि जब व्यक्ति अपने दोषों का परिमार्जन करता है, गुणों का विकास करता है और कमियों की पूर्ति करता है — तो वही संस्कारित नागरिक राष्ट्र के विकास में सहायक बनता है।बृहदारण्यकोपनिषद्, आयुर्वेद, तन्त्रशास्त्र और धर्मशास्त्रों में संस्कार को मानव एवं समाज कल्याण का मूल माना गया है। वस्तुतः, संस्कार का वास्तविक लक्ष्य "व्यक्ति से राष्ट्र निर्माण" की दिशा में मानवता के विकास को सुनिश्चित करना है।

मानव जीवन के लिए कितने संस्कार आवश्यक है इस विषय में मतभेद हैं। पाराशर गृह्यसूत्र के अनुसार संस्कारों की संख्या तेरह बताई गई है।

1 विवाह, 2 गर्भाधान, 3 पुंसवन, 4 सीमन्तोन्नयन, 5 जातकर्म, 6 नामकर्म, 7 निष्क्रमण, 8 अन्नप्राशन, 9 चूडाकरण, 10 उपनयन, 11 केशान्त, 12 समावर्तन और 13 अन्त्येष्टि।'[1]

कौशिक गृह्यसूत्र में उपलब्ध संस्कारों की संख्या पन्द्रह बतलायी गयी है- विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, मेधाजनन, आयुष्मान, नामकरण निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, केशान्त, उपनयन, समावर्तन एवं अन्त्येष्टि। गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतिग्रथों में संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न होते हुए भी मुख्य रूप से संस्कारों की संख्या षोडश मानी गयी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी संस्कार विधि[2] मे षोडश संस्कारों का उल्लेख किया है। पण्डित भीमसेन शर्मा ने षोडश संस्कारों[3] के विवेचन से सम्बंधित षोडश संस्कार नामक पुस्तक में भी संस्कारों की संख्या षोडश ही मानी है। समस्त मानव जीवन संस्कार का ही क्षेत्र है। जन्म से पूर्व के संस्कारों से लेकर अन्त्येष्टि तक के संस्कारों का मानव जीवन में अत्याधिक महत्त्व रहता है। समस्त संस्कारों को विधिपूर्वक सुसम्पन्न करने से ही व्यक्ति का सर्वाङ्गीण कल्याण होता है। इसीलिए प्रजनन भी संस्कारों के अन्तर्गत आता है।

गर्भाधान संस्कार-

जिस कर्म द्वारा गर्भ का संधारण किया जाता है उस प्रक्रिया को गर्भधारण कहते है।[4] शौनक[5] भी कुछ भिन्न अर्थों में इस बात की पुष्टि करते है कि जिस कर्म द्वारा स्त्री शुक्र धारण करती है उसे गर्भाधान कहा जाता है। यथा-

निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भः संधार्यते स्त्रिया ।
तदगर्भालम्भनं नाम कर्म प्रोक्तम् मनीषिभिः ।।

पारस्कर[6] सन्तान उत्पत्ति को गृहस्थ जीवन का मूल आधार मानते है। पति-पत्नी सामाजिक रथ के दो पहिए हैं जिनके आधार पर, परिवार से लेकर राष्ट्र निर्माण तक का संचालन होता है पारस्कर गर्भाधान को उत्तम एवं श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति करना मानते हैं। तैत्तिरीय संहिता के वचनानुसार गर्भाधान का मूल उद्देश्य विवाह के उपरान्त सन्तान उत्पत्ति कर पितृ ऋण से उऋण होना। स्मृति ग्रंथों के अनुसार गर्भाधान शुभ नक्षत्र एवं शुभ तिथियों में करना चाहिए। मनुस्मृति में अष्टमी, चर्तुदशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा में गर्भाधान का निषेध किया है। चतुर्थ दिवस के उपरान्त ऋतुस्नाता स्त्री में चन्द्रवल का विचार करके मघा, मूल नक्षत्रों का परित्याग करके गर्भाधान संस्कार करना चाहिए। स्मृति ग्रंथों के अतिरिक्त गर्भाधान का उल्लेख वेदों में भी मिलता है। अथर्ववेद में गर्भाधान संस्कार को विश्व राष्ट्र हित का साधक कहा गया।[7]

गर्भाधान के समय माता-पिता के शरीर व मन की अवस्था का प्रभाव निश्चय ही उत्पन्न होने वाली सन्तान पर पड़ता है। अतः माता-पिता का मन, विचार स्वस्थ एवं धर्माचरण होना आवश्यक है। इस तथ्य की पुष्टि सुश्रुत संहिताकार के कथन से स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि गर्भाधान संस्कार कोई काल्पनिक धार्मिक कृत्य नहीं था अपितु एक यर्थाथ कर्म था जो वर्तमान समान के सन्दर्भ में राष्ट्र निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकती है।

पुंसवन संस्कार -

पुंसवन शब्द की निष्पत्ति पुं पूर्वक सु धातु से ल्युट प्रत्यय करने से हुई है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है "पुमान सूयते यस्मात् इति पुंसवनम् अर्थात् जिससे सन्तान की उत्पत्ति हो।[8] पुत्र प्राप्ति की भावना से क्रियमाण अनुष्ठान को पुंसवन संस्कार नाम से भी अभिहित किया गया है। पुंसवन संस्कार के तीसरे महीने में गर्भस्थ शिशु के समग्र विकास की कामना से किया जाता था। पुराणों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति के लिए यह संस्कार किया जाता था।[9]

पुंसवन का अभिप्राय सामान्यतः उस कर्म से था जिसके अनुष्ठान से पुरुष सत्तान का जन्म होता हो। पुंसवन संस्कार तब होता था जब बालक के भौतिक शरीर का निर्माण आरम्भ होता था। 'सूपर्णोऽसि' इस उक्ति के द्वारा गर्भस्थ शिशु के स्वस्थ ओजस्वी सबल होने की कामना की जाती थी। इसके अतिरिक्त इस संस्कार के अवसर पर उच्चारित तथा पठित वेद मन्त्रों के प्रभाव, व्यक्ति में विगत जन्मों को स्मरण करने की क्षमता का प्रादुर्भाव होता था। कौशिकगृह्यसूत्र के मतानुसार गर्भिणी स्त्री को 'पुम्' नामक नक्षत्र में मन्त्रोच्चारण[10] से शरमणि को अभिमन्त्रित करके गले में धारण किया जाता था। शर का शाब्दिक अर्थ बाण, भद्रमुंज एक प्रकार का सफेद सरकंडा या घास होता था।[11] शर को वीर्यवर्धक तथा अनेक रोगों का नाश करने वाला माना जाता है।अतः यहाँ पर गर्भिणी स्त्री को शरमणि बांधने से यह अभिप्राय था कि जिस प्रकार बाण तूणीर में रहता है ठीक उसी प्रकार स्त्री आरोग्य होकर पुम् नामक सन्तान को गर्म में धारण करके वीर ओजस्वी पुत्र को उत्पन्न करके एक स्वस्थ परिवार, समाज तथा राष्ट्र का निर्माण हो सके।

सीमन्तोनयन संस्कार-

केशों को विभक्त करने वाली मध्य रेखा 'सीमान्त' कहलाती है। लोक भाषा में इसे माँग कहते है। इस संस्कार का शाब्दिक अर्थ गर्भवती स्त्री के केशों को ऊपर उठाना या विभाजित करना। सुश्रुत संहिता के अनुसार सिर की पाँच सन्धियों को भी सीमान्त कहा जाता है।

"पञ्च सन्धयः शिरसि विभक्ताः सीमान्तः"।[12]

कौशिकगृह्यसूत्र के मतानुसार सीमन्तोनयन गर्भ से अष्टम मास में करना चाहिए। गृह्यसूत्रों एवं पारस्कर, स्मृति ग्रन्थों में भी यह संस्कार षष्ठ एवं अष्टम मास में करने का विधान का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इस बात की पुष्टि आश्वलायन गृहसूत्र से भी हो जाती है कि सीमन्तोनयन संस्कार का आयोजन गर्भ के चतुर्थ मास में किया जाता था। अर्थात् जब बच्चे के मानसिक शरीर का निर्माण प्रारम्भ हो जाता तब यह संस्कार किया जाता था। इस संस्कार से

गर्भवती स्त्री के चित्त में एक सुदृढ़ भावना उत्पन्न हो जाती थी जो गर्भिणी स्त्री में आत्मविश्वास और सन्तान के प्रति कर्त्तव्य का समावेश करती थी।[13] याज्ञवल्क्य स्मृति के के अनुसार गर्भिणी स्त्री की प्रत्येक उचित आकांक्षा को पूर्ण करना चाहिए क्योंकि स्त्री के प्रिय अभीष्ट की पूर्ति से उसके मन पर सुखद प्रभाव पड़ता है। एवं स्त्री के साथ-साथ गर्भस्थ शिभु पर भी अपेक्षित प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए इस अवस्था में स्त्री को प्रसन्न रखना चाहिये

जातकर्म संस्कार

जात शब्द जन् धातु क्त प्रत्यय के संयोग से बना है। 'जातस्य कर्म इति जातकर्म' अर्थात शिशु के जन्म के समय सम्पादन संस्कार जातकर्म संस्कार कहलाता है।[14] कौशिकगृह्यसूत्र[15] के मतानुसार बालक का जातकर्म संस्कार मां का दुग्ध पीने से पूर्व किया जाता है। इसमें मन्त्रोचारण सहित बालक को शंखनाभि, अन्धपुषिका, शंखपुष्पिका एवं पिप्पली आदि दिव्य औषधियों को स्वर्ण की शलाका से घिस कर मधु एवं दधि में मिलाकर चटाया जाता है। वर्तमान समय के सन्दर्भ में इन औषधियों का वैज्ञानिक आधार शंखनाभि को बुद्धिवर्धक, अन्धपुषिका को सौभाग्यप्रद, शंखपुष्पिका को वीर्यवर्धक एवं पिप्पली को मेधावर्धक माना जाता है। इनके सेवन से बालक उत्कृष्ट वक्ता होता है। यह कान्ति स्मृति बल एवं अग्नि को बढ़ाने वाली तथा जहर कोढ़, कृमि, मृगी एवं मानसिक रोगों को नष्ट करने वाली रसायन मानी गयी है।[16]

कौशिक गृह्यसूत्रकार ने यह स्पष्ट किया है कि जातकर्म संस्कार प्रकृतिजन्य आधार स्त्री तथा शिशु को प्रसवजन्य अशोचकालीन आदि असह्य परिस्थितियों से सहज सुरक्षा प्रदान करना एवं इसका मुख्य उद्देश्य नवजात शिशु के बौद्धिक, शारीरिक विकास, स्वास्थ्य रक्षा एवं आयु, वल की वृद्धि करना है।[17]

नामकरण संस्कार-

नाम शब्द नम् धातु से णिच् तथा ङः प्रत्यय के संयोजन से बना है एवं कृ धातु से ल्युट प्रत्यय के संयोग से करण शब्द बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है उत्पन्न हुए शिशु का नामकरण करना। विभिन्न गृह्यसूत्रों में नामकरण जन्म के पश्चात् दसवें या बारहवें दिन शुभ मानते है। जबकि कौशिकगृह्यसूत्र के अनुसार जन्म के ग्यारहवें, बारहवें या तेरहवें दिन नवजात शिशु का नामकरण अभीष्ट मानते है।[18]

गोभिल गृह्यसूत्र के मतानुसार नवजात शिशु की जन्मतिथि, नक्षत्र एवं नक्षत्र के अधिष्ठातृदेव के प्रति की आहुतियां अर्पित करके पिता शिशु का नामकरण संस्कार करता है। महर्षि मनु मनुस्मृति में नामकरण संस्कार को दसवें या बारहवें दिन सुविधाजनक तिथि में शुभ नक्षत्र करने का विधान करते हैं। जबकि याज्ञवल्क्य इस संस्कार को जन्म से ग्याहरवें दिन को ही प्रशस्त मानते है।[19]

नामकरण संस्कार के सम्बन्ध में महर्षि मनु का यह का कथन भी मनुस्मृति में मिलता है कि ब्राह्मण का नाम मांगल्य का द्योतक, क्षत्रिय का नाम बलपरक, वैश्य का नाम धन संयुक्त होना चाहिए। एवं इसके अतिरिक्त ब्राह्मण का नामान्त मंगलसूचक, क्षत्रिय के नामान्त वीरता सूचक, वैश्य के नाम के साथ धनवत्ता बोधक एवं शूद्र के नाम के साथ उसके कर्म के अनुसार शब्द प्रयुक्त करना चाहिए उक्त प्रसंग महर्षि मनु का प्रतीत नहीं होता है। यह अंश प्रक्षिप्त भाग का हो सकता है।[20]

इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्र में नाम की महिमा अनन्त रूप से यत्र तत्र दिखाई देती है वेदों में भी प्राकृतिक वस्तुओं का नाम प्रदान किया गया है। बिना नामकरण के समाज के व्यवहार का संचालन करना असम्भव है। नाम अखिल व्यवहार का हेतु है एवं शुभ एवं अशुभ कर्मों से यश कीर्त्ति आदि प्राप्त करता है। अतः नामकरण संस्कार अत्यन्त प्रशस्त माना गया है इसीलिए समस्त जगत का अस्तित्व नाम में निहित है। यथा-

यत्राय पुरुषो म्रियते किमेनं न जह्वीति।
नामेत्यनन्तं ते स तेन लोकं जयति।।[21]

निष्क्रमण संस्कार-

घर से बाहर जब पहली बार नवजात शिशु को सूर्य के दर्शन कराया जाता है अर्थात् सूर्य दर्शन के लिए प्रथम बार बाहर निकालने के समय जो संस्कार किया जाता है वह संस्कार निष्क्रमण कहलाता है। कौशिकगृह्यसूत्र के अनुसार जन्म के पश्चात् चतुर्थ मास में सर्वप्रथम नवजात शिशु को मंत्र उच्चारण सहित घर से बाहर निकालने का विधान है। बालक नवतात शिशु होने के कारण अति सुकुमार होता है। बालक के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग अत्यन्त शिथिल अवस्था में होते है बहुत गर्मी या सर्दी से बालक के शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अतः जब तक बालक के शरीर में कुछ दृढ़ता न आ जाए तब तक बाह्य वातावरण से बालक की विशेष रक्षा करनी पड़ती है। इसी कारण स्मृतिकारों एवं गृहयसूत्रकारों ने जन्म के पश्चार तृतीय या चतुर्थ मास में बालक का निष्क्रमण समय निर्धारित क्रिया है।[22]

अतः संक्षेप में निष्क्रमण संस्कार का मुख्य प्रयोजन नवजात शिशु की दैहिक आवश्यकताओं तथा उसके मन पर सृष्टि की असीमित महत्व को प्रदर्शित करना तथा बच्चे का सर्वांगीण विकास की भावना से यथासम्भव शुद्ध वातावरण में निकालकर शुद्ध वायु का सेवन कराना ही स्मृतिकारों का कथन रहा है।

अन्नप्राशन संस्कार -

बालक को सर्वप्रथम अन्न खिलाने की प्रक्रिया को अन्नप्राशन संस्कार कहते है। जन्म से लेकर बालक चार-पांच माह तक माता पर निर्भर रहता है। तदोपरान्त जैसे-जैसे बालक के शरीर का विकास होता है बालक को अधिक दूध की आवश्याकता पड़ती है। जबकि माता के दुग्ध की मात्रा कम होने लगती है। इसीलिए बालक की भोजन से सम्बन्धित दैहिक पूर्ति को ध्यान में रखते हुए अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न कराया जाता है। मानव-जीवन में अन्न का महत्त्वपूर्व योगदान है। क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक प्राणी का अन्न के बिना जीवन यापन करना अत्यन्त कठिन है। इसीलिए 'श्रीमद् भागवत गीता में भगवान श्री कृष्ण ने भी समस्त प्राणियों की सत्ता अन्न में निहित मानी है।[23]

उपनिषदों में भी मन को प्रजापति कहा गया है। अर्थात् सभी प्राणियों का आहार रूप अन्न ही प्रजापति है। क्योंकि अन्न ही प्राणियों की प्राण शक्ति को प्रदान करता है। जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र के प्राणी जीवित रहते हैं। अन्नप्राशन संस्कार कब करना चाहिए इस विषय पर भी स्मृतिकारों ने विस्तृत चर्चा की है। काशिकगृह्यसूत्र के मतानुसार बालक का अन्नप्राशन संस्कार जन्म के पश्चात् छठे मास में करना चाहिए।[24] इसके अतिरिक्त अन्य गृहसूत्रों मे अन्नप्राशन संस्कार का विधान षष्ठ मास में ही करने का विधान बतलाया गया है। स्मृति ग्रन्थों मे भी षष्ठ मास मे अन्नप्राशन संस्कार करने का विधान है।

चूड़ाकरण संस्कार-

बालक के सिर के बाल जब सर्वप्रथम काटने का आयोजन किया जाता था तब इस संस्कार को किया जाता था। इस संस्कार का मुख्य प्रयोजन बालक के सर्वविध कल्याण एवं दीर्घ आयु के लिए चूड़ाकरण की अनिवार्यता प्रदर्शित की गयी थी। 'कौशिकगृह्यसूत्र के अनुसार इस संस्कार को कुल धर्म के अनुसार या एक वर्ष तक की आयु के भीतर करने का विधान था।

विभिन्न गृह्यसूत्रों में चूड़ाकरण संस्कार जन्म से प्रथम वर्ष, तृतीय वर्ष, छठे, एवं सातवें वर्ष का विधान बतलाते हैं। अत्रिस्मृतिकार महर्षि अत्रि ने इस संस्कार पर विशेष रूप से बल दिया है।[25] अत्रि के अनुसार प्रथम मास में बालक का मुण्डन करने से बालक संस्कारित होता है। तथा बालक दीर्घायु एवं ब्रह्मवर्चस्व को प्राप्त करता है।

तृतीय मास में मुण्डन करने से बालक समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करता है। एवं पञ्चम वर्ष में सम्पादित संस्कार से बालक पशुधन से समृद्ध होता है। महर्षि अत्रि चुड़ाकरण को चौल नाम से भी अभिहित करते हैं। नारद स्मृति के अनुसार जन्म से तृतीय मास में किया गया मुण्डन संस्कार उत्तम एवं षष्ठ तथा सप्तम मास में साधारण दसवें एवं ग्यारहवें मास में निकृष्ट मानते है।[26]

उपनयन संस्कार –

व्याकरण की दृष्टि से 'उप' उपसर्गपूर्वक नी धातु से ल्युट् प्रत्यय के संयोजन से बनता है। उपनयन शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है उप नयन। इसमे उप का अर्थ समीप एवं नयन का अर्थ "ले जाना' अर्थात्, विद्या अध्ययन के उद्देश्य से बालक को गुरु के समीप ले जाना।

'अध्ययनार्थ आचार्यस्य उप समीपं नीयते येन कर्मणा' इति।[27]

वीर मित्रोदय के अनुसार उपनयन संस्कार के द्वारा वेद, गुरु, यम, नियम एवं देवता के सामीप्य के लिए दीक्षित किया जाता है। अथर्ववेद में उपनयन शब्द का प्रयोग ब्रह्मचारी को गुरु के द्वारा ग्रहण करना अर्थात् वेद की विद्या अर्जन के अर्थ में की गई है। मनुस्मृतिकार महर्षि मनु उपनयन संस्कार को सावित्री वचन कहते हैं। सावित्री को ब्रह्मचारी की माता एवं आचार्य को पिता कहा गया है। कौशिक गृह्यसूत्र के अनुसार उपनय संस्कार का उल्लेख केवल ब्राह्मणों के लिए मिलता है। जिसमें ब्राह्मण बालक की आयु पांच से आठ वर्ष की होनी चाहिए।[28]

परन्तु पारस्कर गृह्यसूत्र में उपनयन संस्कार का उल्लेख सभी वर्णों सहित जन्म से आठवें वर्ष ब्राह्मण का ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय, बारहवें वर्ष में वैश्य का एवं शुद्र को अपनी कुल परम्परा के अनुसार उपनयन करने का विधान करते हैं। बौधायन गृहयसूत्र के मतानुसार सप्तम वर्ष में बालक का उपनयन करने से बालक ब्रह्मवर्चस्व होता है। आठवें वर्ष में बालक दीर्घ आयु प्रदान करता है। नवम वर्ष में बालक विभिन्न ऐश्वयों से युक्त होता है, दसम मास में बालक अन्न से परिपूर्ण रहता है, बारहवें वर्ष मे बालक पशुधन से युक्त होता है, तेरहवें वर्ष मे बालक शिल्प कौशल के लिए दक्ष होता है। चौदहवें वर्ष में तेजस्विता पन्द्रहवें वर्ष में अपने बन्धुओं से सुख,एवं सर्वगुण सम्पन्नता के लिए सोलहवें वर्ष में बालक का उपयन करना चाहिए। मनुस्मृति में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।[29]

कर्णवेध संस्कार -

कर्णवध संस्कार का उद्भव आधुनिक काल में हुआ। गृह्यसूत्रों में इस संस्कार का उल्लेख नहीं पाया जाता है। किन्तु मध्य कालीन युग मे कर्णवेध संस्कार अनिवार्य था देवल स्मृति के मतानुसार महर्षि देवल ने कविध संस्कार ब्राह्मणो के लिए अनिवार्य बताया है। देवल स्मृति में तो यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि जिस ब्राह्मण का कर्णवेध संस्कार न हुआ हो उससे श्राद्ध आदि कर्म नहीं कराने चाहिए।[30] यद्यपि यह संस्कार सौन्दर्य तथा स्वास्थ्य से सम्बद्ध रखता है। सुश्रुत संहिता के अनुसार रोगों से रक्षा तथा आभूषणों के निमित्त बालक का कर्णवेध संस्कार करना चाहिए महर्षि ने करवेध संस्कार की इस तरह व्याख्या की है। अण्डकोश वृद्धि तथा आंतो की वृद्धि को रोकने के लिए कर्णवध संस्कार को आवश्यक मानते हैं।

विद्यारम्भ संस्कार -

विद्यारम्भ संस्कार का उल्लेख सर्व प्रथम व्यास स्मृति में उपलब्ध होता है। बालक की अवस्था जब पाँच वर्ष की हो जाती थी तब उसे शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती थी। अर्थात् पहले बच्चे द्वारा वर्णाक्षर का ज्ञान विद्यारम्भ संस्कार कहलाता था। जब बालक को वर्णाक्षर का ज्ञान हो जाता था तब आरम्भ में ब्रह्माचारी को आचार्य गायत्रीमन्त्र का उपदेश देता है तथा उससे प्रतिपद उच्चारण करवाकर गायत्री मन्त्र का अर्थ बताता था। ब्रह्मचर्यकाल में बालक किस प्रकार संयम एवं नियमपूर्वक विद्याध्ययन करें, इसका विस्तृत उल्लेख मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में मिलता है।[31]

अध्ययनकाल में वह अभिवादनशील होकर गुरुजनों की सेवा करता है। स्मृतिकारों ने ऐसे शिष्यों की आयु, विद्या, यश तथा बल में सतत वृद्धि होती है। विद्याध्ययन ही ब्रह्मचारी का सर्वोपरि तप कहा गया है। अध्ययन समापन कर जब ब्रह्मचारी बालक आचार्य की सेवा में उपस्थित होकर उससे दीक्षान्त आशीर्वाद लेता है। तो आचार्य उसे सत्य बोलने, धर्म का आचरण करने, स्वाध्याय में प्रमाद न करने तथा भावी जीवन में अध्ययन एवं प्रवचन से विरक्त न होने का उपदेश देते हैं। दूरदर्शी आचार्य निम्न वाक्यों में यह कहना नहीं

भूलते कि शिष्य को चाहिए कि वह अपने आचार्य के निन्दित कर्मों "का सेवन न करें तथा उनके सुचरितों का ही अनुकरण करें।[32]

वेदारम्भ संस्कार-

वेदारम्भ के अन्तर्गत बालक को चारों वेदों के अध्ययन के लिए नियम निर्धारित किये जाते है। कटिवस्त्र, उत्तरीय तथा दण्ड को ग्रहणकर ब्रह्मचारी दीक्षा दाता गुरु के समक्ष प्रतिज्ञा करता है कि वह क्रोध, असत्य आदि दुर्गुणों को त्याग देगा। अतिस्नान, अतिभोजन, अतिनिद्रा तथा अतिजागरण से पृथक् रहेगा तथा मोह, भय, शोक, लोभ, आदि से दूर रहेगा। मेखला दण्डधारी होकर भैक्ष्यचर्या ही उसकी नियमित दिनचर्या रहेगी। वह प्रातः सांय आचार्य का अभिवादन कर उनसे शास्त्राध्ययन करेगा। इस प्रकार निश्चित अवधि में समग्र शास्त्रों का अध्ययन कर विद्या स्नातक तथा व्रत स्नातक बनता है।[33]

केशान्त संस्कार-

बालक का प्रथम मुण्डन प्रायः पहले या तीसरे वर्ष में हो जाता है। यह कार्य चूड़ाकरण संस्कार में उल्लखित हो चुकी है। प्रथम मुण्डन का प्रयोजन केवल गर्भ के केशमात्र दूर करना होता है। उसके बाद इस केशांत संस्कार में मुण्डन, करना एवं शिखा रखना होता है। जिसमें वेदारम्भ तथा क्रिया क्रमों के लिऐ अधिकारी बन सके। अर्थात् वेद-वेदाङ्गों के पढ़ने तथा यज्ञादि कार्यों में प्रतिभाग कर सकें। अथर्ववेद में भी केशान्त संस्कार के अन्तर्गत केशों को काटते हुए सिर के मध्य शिखा रखने का निर्देश दिया गया है।[34]

सुश्रुत संहिता के अनुसार सिर के मध्य शिखा रखने का वैज्ञानिक आधार है मस्तक के भीतर ऊपर की ओर शिखा तथा सन्धि का सन्निपात होता है। इस अंग को किसी प्रकार का आघात लगने से तत्काल व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। अतः इस महत्त्वपूर्ण अंग की सुरक्षा अति आवश्यक मानी जाती थी। इस अंग पर शिखा रखने से इस प्रयोजन की पूर्ति हो जाती थी।

समावर्तन संस्कार -

गुरु के सामीप्य रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वेद तथा वेदांगों की सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के बाद सविधि गुरुकुल से घर लौटने का नाम समावर्तन है। समावर्तन संस्कार को स्नान कर्म की संज्ञा प्रदान की गयी थी। अर्थात् वेदाध्ययन के उपरान्त का स्नान कर्म।[35] इसी कारण समावर्तन करने वाले ब्रह्मचारी को स्नातक कहा जाता था। स्नातक भी तीन प्रकार के होते थे।

(क)जो व्रत समाप्ति के पूर्व विद्या समाप्त कर लेते थे वह विद्यास्नातक कहलाते थे।

(ख)जो व्रत समाप्ति पर ही स्नातक होना चाहते थे वह व्रतस्नातक कहलाते थे।

(ग)जो विद्या एवं व्रत दोनों की समाप्ति विधिवत करते थे वह विद्याव्रत स्नातक कहलाते थे।

अतः अन्तिम विद्याव्रत स्नातक को ही सर्व सर्वश्रेष्ठ स्नातक माना जाता था। समावर्तन संस्कार बालक के ब्रह्मचर्य जीवन के अन्त का सूचक था। यह संस्कार आधुनिक उपाधि वितरण समारोह अर्थात् दीक्षान्त समारोह के समान था। जो ब्रहमचारी अपनी शिक्षा विधिवत समाप्त कर लेते थे उन्ही ब्रहमचारियों का आचार्य द्वारा समावर्तन संस्कार सम्पन्न किया जाता था परन्तु जिन ब्रह्मचारी बालकों को आचार एवं ज्ञान की सम्यक् शिक्षा नही होती थी उनके लिए समावर्तन, वर्जित था।[36]

विवाह संस्कार-

समस्त संस्कारों के अन्तर्गत विवाह संस्कार का एक सार्वभौमिक एवं महत्वपूर्ण स्थान है। अधिकतर गृह्यसत्रों में संस्कारों का आरम्भ विवाह संस्कार से होता है। क्योंकि इस संस्कार को गृहययज्ञों एवं समस्त संस्कारों का उदगम स्थल माना गया है। मनुष्य के लिए धर्माचरण पूर्वक जीवन बिताकर परम लक्ष्य-परमतत्व प्राप्त करने में अपनी स्थिति के अनुसार चार आश्रमों की आवश्यकता बतायी गयी है। ये चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ संन्यासादि । ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या अर्जन करना, एवं अर्जन की गयी विद्या की अनुभूति और पितृ ऋण से उऋण, संतति प्राप्ति गृहस्थाश्रम का मुख्य लक्ष्य होता है। विधिवत किया गया विवाह संस्कार सभी दोषों को नाश करने वाला, और गुणों को जन्म देने वाला एवं पति पत्नी में उत्पन्न होने वाला प्रेम पवित्र होता है। सन्तान धर्मनिष्ठ बनती है।

आधुनिक काल में विवाह संस्कार प्रायः लोग एक उत्सव समझ बैठे है। यद्यपि इन संस्कारों का तात्पर्य बहुत से लोग नहीं समझते। विवाह संस्कार को मात्र विषय भोग का सुख साधन मात्र समझते है और उस सुख में अन्तर पड़ने पर परस्पर परित्याग करने को तैयार हो जाते है जिसका परिणाम उसे जन्मजन्मान्तर भोगना पड़ता है।[37]

अन्त्येष्टि संस्कार-

अन्त्येष्टि शब्द अन्त्य और इष्टि शब्द के संयोग से बना है। इसमें अन्त्य का अर्थ है-अन्त में होने वाला एवं इष्टि का अर्थ है यज्ञ।[38] अतः शरीर का अन्तिम संस्कार यज्ञस्वरूप कृत्य अन्त्येष्टि संस्कार कहलाता है। गृहयसूत्रों में अन्त्येष्टि संस्कार को प्रेतकर्म तथा और्ध्वदेहिक के नाम से भी जाना जाता है। अन्त्येष्टि संस्कार का मूल रूप वेदों में मिलता है। अन्त्येष्टि संस्कार सभी वर्ग अपनी संस्कृति एवं मान्यताओं के अनुसार किसी न किसी रूप में वैदिक काल से ही करते आ रहे हैं। यथा शव को भूमि में दबाना, जल में प्रवाहित करना, अग्नि में जलाना, एवं हवा में जमीन पर खुला छोड़ना। अथर्ववेद के अनुसार जो शव भूमि में दफनाएं जाते हैं या जो शव जल में प्रवाहित किए जाते हैं या जो शव अग्नि में जलाये जाते हैं, तथा जो जमीन पर खुले छोड़ दिये थे उन्हें हवि रूप में ग्रहण करके सद्गति प्रदान करें। अत्येष्टि संस्कार वस्तुतः अग्नि में जलाना ही श्रेयस्कर होता था क्योंकि इस विधि से मृतक पञ्चभौतिक तत्वों में सरलता से समाहित हो जाता था और भूमि, जल, वायु एवं वातावरण भी दुषित होने से बच जाते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मानव जीवन को श्रेष्ठ, सुसंस्कृत और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए संस्कारों का अत्यधिक महत्त्व है। संस्कार न केवल व्यक्ति के दैहिक, बौद्धिक एवं मानसिक परिष्कार के साधन हैं, बल्कि वे राष्ट्र के नैतिक आधारस्तंभ भी हैं।

समाज की संरचना, उसकी संस्कृति और उसकी निरन्तरता का आश्रय संस्कारों पर ही टिका है। संस्कारों के विधिवत् सम्पादन से व्यक्ति सुसंस्कृत, अनुशासित और कर्तव्यनिष्ठ बनता है — और ऐसे संस्कारित व्यक्तियों का समूह ही सशक्त राष्ट्र का निर्माण करता है। संस्कार व्यक्ति में वह चेतना उत्पन्न करते हैं जो उसे केवल अपने सुख तक सीमित न रखकर समष्टि कल्याण की दिशा में प्रेरित करती है। यही चेतना राष्ट्रभावना का मूल स्रोत बनती है।

आज जब युग परिवर्तन की लहर में आधुनिकता के नाम पर नैतिक मूल्यों का ह्रास होता दिखता है, तब प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित षोडश संस्कारों का महत्व और बढ़ जाता है। ये संस्कार मनुष्य को आत्मशुद्धि, आत्मनियंत्रण और आत्मबल की दिशा में प्रेरित करते हैं — जिससे वह राष्ट्र के विकास में अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा और सृजनशीलता के साथ कर सके। यद्यपि संस्कारों का प्रमुख उद्देश्य शरीर, मन और मस्तिष्क की शुद्धि है, परन्तु इसका अंतिम लक्ष्य चरित्रवान नागरिक का निर्माण है — जो राष्ट्र के गौरव, एकता और प्रगति का संवाहक बनता है। हमारे आचरण, विचार और कर्मों के पीछे जो संस्कार कार्यरत हैं, वही राष्ट्र के चरित्र की वास्तविक पहचान हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि संस्कार राष्ट्र निर्माण की आत्मा हैं। जिन राष्ट्रों के नागरिक संस्कारित होते हैं, वहाँ संस्कृति, शांति और प्रगति स्थायी रूप से निवास करती है। संस्कारित नागरिक ही राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को साकार करते हैं। इस प्रकार, संस्कारों का सार्थक अनुपालन ही राष्ट्र के सर्वांगीण विकास, नैतिक उत्कर्ष और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का मूल आधार है।

सन्दर्भ सूची

[1]हिन्दु संस्कार पृष्ठ-18, पाण्डेय डॉ राजबली, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1995

[2]संस्कारविधिः, सरस्वती दयानन्द स्वामी, गीता प्रेस गोरखपुर, वि. स. 1997

[3]वही

[4]पूर्वमीमांसा, 1.4.2 शस्त्री वैद्यनाथ आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूना, 1957

[5]वीरमित्रोदय, आग 1, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1987

[6]पारस्कर गृह्यसूत्र पृ.-16 झा डॉ हरिहर श्री उत्कल प्रकाशन पुरी, 1981

[7]अथर्ववेद 6.17 सायण भाष्य विश्वबन्धु विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1961

[8]शब्दकल्पद्रुम पृ-274 देव राधाकान्त MLBD, देहली, 1961

[9]पास्कर गृह्यसूत्र, 16.22

[10] अथर्ववेद 3.23

[11] संस्कृत हिन्दी कोश पृ-1004, आप्टे वामन शिवराम, MLBD, देहली, 1966

[12] सुश्रुतसंहिता - 6.2.7 (टी.) डॉ धाणेकर गोविन्द भास्कर MCLD दिल्ली 1975

[13] पारस्कर गृह्यसूत्र, 16.12

[14] याज्ञवल्क्यस्मृति, 3.89 पाण्डेय डॉ उमेशचन्द्र चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी, 1967

[15] 'संस्कृत हिन्दी कोश पृ. 401

[16] अथर्ववेद 6.139

[17] कौशिकगृह्यसूत्र, 33.1 सिंह उदयनारायण, शास्त्र प्रकाश भवन, मथुरा पुरा बिहार, 1942

[18] वही 58.13

[19] याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.2

[20] मनुस्मृति, 2.31 नेने श्रीगोपाल, चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी, 1987

[21] बृहदारण्यकोपनिषद्, 3.2.12, गीता प्रेस गोरखपुर

[22] मनुस्मृति, 2.34

[23] गीता, 3.14, गीता प्रेस गोरखपुर

[24] कौशिकगृह्यसूत्र, पृ. 143 गीता प्रेस गोरखपुर वि.स.- 2012

[25] पारस्कर गृह्यसूत्र, 2.1.1

[26] वीरमित्रोदयसंस्कारप्रकाशभाष्य पृ- 296

[27] शब्दकल्पद्रुम पृ-254-55

[28] कौशिकगृह्यसूत्र, 55.1

[29] मनुस्मृति, 2.37

[30] वीरमित्रोदयसंस्कारप्रकाशभाष्य पृ- 261

[31] मनुस्मृति, 2.154

[32] तैतरीयोपनिषद्, 1.11

[33] संस्कार अंक पृ- 397 गीता प्रेस गोरखपुर वि.स.- 1980

[34] अथर्ववेद 6.68

[35] पारस्कर गृह्यसूत्र, 2.6.1

[36] गृह्यसूत्र- 1.2.3

[37] संस्कार अंक पृ- 113

[38] संस्कृतहिन्दीकोश पृ,-234